पहला प्रवचन

## रहस्य स्कूल- चमत्कार से एक भेंट

(केवल प्रथम प्रवचन 16.8.1986 बंबई, अंग्रेजी से अनुवादित)

प्यारे भगवान,

क्या आप कृपया समझाने की अनुकंपा करेंगे कि रहस्य-स्कूल का ठीक-ठीक कार्य क्या है?

मेरे प्रिय आत्मन्,

तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम आज यहां हो, क्योंकि हम गुरु-शिष्य के बीच वार्ता की एक नयी शृंखला का प्रारंभ कर रहे हैं।

यह एक नई पुस्तक का जन्म ही नहीं है, यह एक नये आयाम की घोषणा भी है। आज, इस क्षण, सायं सात बजे, शनिवार, सोलह अगस्त सन उन्नीस सौ छियासी- एक दिन इस क्षण को एक ऐतिहासिक क्षण की भांति स्मरण किया जाएगा, और तुम सौभाग्यशाली हो क्योंकि तुम इसमें सहभागी हो। तुम इसे निर्मित कर रहे हो, बिना तुम्हारे यह संभव नहीं।

पुस्तकें लिखी जा सकती हैं, यंत्र को बोलकर लिखवाई जा सकती हैं, लेकिन जिसकी शुरुआत मैं करने जा रहा हूं वह एक भिन्न ही बात है। यह एक उपनिषद है।

बहुत समय से भुला दिए गए, किसी भी भाषा के सर्वाधिक सुंदर शब्दों में से एक, अति जीवंत शब्द, "उपनिषद" का अर्थ है- सदगुरु के चरणों में बैठना। इसका और कुछ अधिक अर्थ नहीं है, बस गुरु की उपस्थिति में रहना, उसे अनुमति दे देना कि वह तुम्हें अपने स्वयं के प्रकाश में, अपने स्वयं के आनंद में, अपने स्वयं के संसार में ले जाए।

और ठीक यही कार्य रहस्य-विद्यालय का भी है।

गुरु के पास वह आनंद, वह प्रकाश है, और शिष्य के पास भी है परंतु गुरु को पता है और शिष्य गहन निद्रा में है।

रहस्य-विद्यालय का कुल कार्य इतना ही है कि शिष्य को होश में कैसे लाया जाए, उसे कैसे जगाया जाए, कैसे उसे स्वयं उसे होने दिया जाए, क्योंकि शेष सारा संसार उसे कुछ और बनाने की चेष्टा कर रहा है।

दुनिया में कोई भी तुममें, तुम्हारी संभावना में, तुम्हारी वास्तविकता में, तुम्हारे अस्तित्व में उत्सुक नहीं है। प्रत्येक का अपना निहित स्वार्थ है, उनका भी जो तुम्हें प्रेम करते हैं। लेकिन उन नाराज मत होओ, क्योंकि वे भी उनते ही पीड़ित, परेशान और फिकर हैं जितने कि तुम। वे भी उतने ही मूर्च्छित, बेहोश हैं, जितने कि तुम। वे सोचते हैं कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह प्रेम है; लेकिन वे जो कर रहे हैं वह सच में तुम्हारे अहित में है। और प्रेम कभी किसी के अहित में नहीं हो सकता

प्रेम या तो होता है या फिर नहीं होता। साथ ही प्रेम अपने साथ सृजन की सभी संभावनाएं, सृजन के सभी आयाम लेकर आता है। यह अपने साथ स्वतंत्रता लेकर आता है और संसार की बड़ी से बड़ी स्वतंत्रता यही है कि व्यक्ति को "स्वयं" होने दिया जाए।

लेकिन न तो माता-पिता, न पड़ोसी, न शिक्षा व्यवस्था, न ही मंदिर-मस्जिद-चर्च, न राजनीतिज्ञ- कोई भी नहीं चाहता कि व्यक्ति स्वयं हो सके क्योंकि उनके लिए यह सर्वाधिक खतरनाक बात है। जो लोग स्वयं होते

हैं उन्हें गुलाम नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने स्वतंत्रता का स्वाद ले लिया है, अब उन्हें वापस गुलामी में घसीटना संभव नहीं।

इसलिये बेहतर यही है कि उन्हें स्वतंत्रता का, उनके अपने अस्तित्व का, उनकी संभावना का, उनकी क्षमता, उनके भविष्य का, उनकी प्रतिभा का उन्हें स्वाद ही नहीं लेने दिया जाये। अपने पूरे जीवन वे अंधकार में टटोलते, दूसरे अंधे लोगों से राह पूछते रहें, उन लोगों से उत्तर पूछते रहें, जो स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं जानते। लेकिन वे पाखंडी और धोखेबाज हैं। ये ही लोग नेता, धर्म-प्रचारक, संत-महात्मा कहलाते हैं। वे स्वयं नहीं जानते कि वे कौन हैं?

परंतु ऐसे चालाक और चालबाज लोग पूरी दुनिया में हैं जो सरल, निर्दोष लोगों का शोषण करते हैं, उनके मनों को उन विश्वासों से विषैला बनाते हैं जिनके बारे में वे स्वयं भी सुनिश्चित नहीं होते।

रहस्य-विद्यालय का कार्य है कि गुरु बोले या मौन रहे, तुम्हारी और देखे या कोई संकेत करे, या बंद आंखें किए बस मात्र बैठा रहे- वह ऊर्जा का एक क्षेत्रफल निर्मित कर देता है। और अगर तुम ग्राहक हो, यदि तुम खुले हुए उपलब्ध हो, यदि तुम अज्ञात की यात्रा पर जाने को तैयार हो तो तुममें कुछ घटित होता है और तुम वही पुराने व्यक्ति नहीं रह जाते।

तुमने कुछ ऐसा देख लिया जिसके विषय में पहले तुमने मात्र सुना था। और सुनने मात्र से भरोसा नहीं आता, संदेह पैदा होता है। क्योंकि यह इतना रहस्यपूर्ण है यह कोई तर्कपूर्ण, बुद्धिपूर्ण या बौद्धिक नहीं है।

लेकिन एक बार तुम देख लो, अनुभव कर लो, एक बार तुम गुरु की ऊर्जा में स्नान कर लो तो एक नये ही व्यक्ति का जन्म होता है। तुम्हारा पुराना जीवन समाप्त हो जाता है।

एक प्यारी-सी कहानी है, एक महान सम्राट प्रसेनजित, गौतम बुद्ध से मिलने गये। जब वे बातचीत कर रहे थे, बीच में ही एक वृद्ध बौद्ध संन्यासी- उसकी उम्र पचहत्तर वर्ष के लगभग रही होगी- गौतम बुद्ध के चरण-स्पर्श करने आया। उस वृद्ध संन्यासी ने कहा, "कृपया मुझे क्षमा करें। मुझे आपकी बातचीत में विघ्न तो नहीं डालना चाहिए, परंतु मेरा समय---- मुझे सूर्यास्त से पूर्व ही दूसरे गांव पहुंच जाना है। और यदि मैं अभी से ने चल पड़ूं, तो मैं दूसरे गांव न पहुंच सकूंगा।" बौद्ध भिक्षु उन दिनों रात्रि में यात्रा नहीं करते थे। "और मैं आपके चरण-स्पर्श किए बिना जा भी नहीं सकता क्योंकि कल का क्या ठिकाना; कल मैं आपके चरण छू सकूं या नहीं, यह भी सुनिश्चित नहीं है। कौन जाने यह अंतिम ही हो। इसलिए कृपया आप लोग मेरे को क्षमा करें। मैं आपकी बातचीत में विघ्न नहीं पहुंचाऊंगा।"

गौतम बुद्ध बोले, "बस एक प्रश्न... तुम्हारी आयु क्या है?" बड़ा अजीब-सा प्रश्न... जिसका कोई संदर्भ नहीं। और वह वृद्ध भिक्षु बोला, "मेरी आयु अधिक नहीं, केवल चार वर्ष है।"

सम्राट प्रसेनजित को तो भरोसा ही न आया। पचहत्तर वर्ष के व्यक्ति की आयु चार वर्ष कैसे हो सकती है! वह सत्तर या, अस्सी कहता तो कोई खास बात नहीं थी। क्योंकि अलग-अलग व्यक्तियों के वृद्ध दिखने की अवस्था भिन्न-भिन्न होती है, अतः ठीक से निर्णय नहीं किया जा सकता। परंतु चार वर्ष तो हद हो गयी! चार वर्ष में तो कोई पचहत्तर वर्ष जितना वृद्ध नहीं हो सकता।

बुद्ध ने कहा, "जाओ मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।"

प्रसेनजित बोले, "यह अनावश्यक प्रश्न पूछकर आपने मेरे लिये एक समस्या खड़ी कर दी है। क्या आप समझते हैं कि यह व्यक्ति चार वर्ष का है?"

बुद्ध ने कहा, "अब मैं तुम्हें समझाता हूं। यह प्रश्न अनावश्यक, या प्रयोजन-रहित न था। तुम्हारे लिये ही तो मैं यह प्रश्न उससे पूछ रहा था- सच तो मैं तुम्हारे भीतर ही प्रश्न निर्मित कर रहा था- क्योंकि तुम व्यर्थ की बातचीत में संलग्न थे। तुम मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ रहे थे। मैं चाहता था कि कोई सार्थक प्रश्न तुमसे आये।"

अब, यह प्रश्न संगत है। हां, उसकी आयु चार वर्ष ही है। क्योंकि हमारी आयु की गणना का ढंग यही है, वह उस दिन से गिनी जाती है जिस दिन से कोई व्यक्ति अपने पूरे अस्तित्व के रूपांतरण के लिये, बिना कुछ भी पीछे बचाये, सदगुरु को अनुमति देता है। उसके इकहत्तर वर्ष तो बिल्कुल व्यर्थ गए; वह चार वर्ष ही जीया है। और मैं सोचता हूं कि तुम भी समझ सकोगे कि तुम्हारे साठ वर्ष भी व्यर्थ ही गये यदि तुमने स्वयं को जन्म न दिया। और पुनर्जन्म का केवल एक ही उपाय है कि किसी ऐसे सदगुरु के संपर्क में आ जाना जो कि स्वयं अपने घर पहुंच गया हो। केवल तभी सच्चे जीवन का प्रारंभ होता है।"

रहस्य-विद्यालय जीवन जीने की कला सिखाता है। इसका कुल विज्ञान है जीने की कला। स्वभावतः इसमें बहुत-सी बातें हैं क्योंकि जीवन बहुआयामी है। लेकिन पहला कदम तुम्हें समझ लेना चाहिए- तुम्हें पूर्णरूप से खुले, ग्रहणशील होना चाहिए।

लोगों की हालत बंद घरों जैसी है- एक खिड़की भी खुली नहीं। ताजा हवा उन घरों से गुजरती नहीं। गुलाब बाहर खड़े हैं लेकिन वे अपनी सुगंध उन घरों में नहीं लुटा सकते। सूरज रोज निकलता है, द्वार पर दस्तक देता है और वापस चला जाता है; द्वार पूरी तरह से बहरे हैं। वे द्वार ताजी हवा के लिये, नयी सूरज की रोशनी के लिये, ताजी सुगंध के लिये उपलब्ध नहीं हैं, वे किसी के लिये भी उपलब्ध नहीं हैं। वे घर नहीं, कब्र हैं।

उपनिषद अपने भीतर रहस्य-विद्यालय के समस्त जीवन-दर्शन को संजोये होता है।

उपनिषद न तो हिंदुओं के हं्रैं, न ही किसी अन्य धर्म के। उपनिषद तो अलग-अलग रहस्यदर्शियों द्वारा अनुभूत अपने शिष्यों को कहे गए वचन हैं।

इसी संदर्भ में चार बातें समझ लेनी चाहिए।

पहली बात, विद्यार्थी- वह गुरु के पास आता तो है पर उस तक कभी पहुंचता नहीं, वह केवल शिक्षक तक पहुंचता है। चाहे यह वही व्यक्ति क्यों न हो, लेकिन विद्यार्थी वहां रूपांतरण के लिये, स्वयं के पुनर्जन्म हेतु नहीं आता। वह वहां कुछ और अधिक जानकारी लेने के लिये आता है। वह कुछ अधिक जानकार होना चाहता है। उसके पास प्रश्न होते हैं, पर वे प्रश्न मात्र बौद्धिक होते हैं, अस्तित्वगत नहीं। इन प्रश्नों का उसके जीवन से कोई लेना-देना नहीं होता है। यह उसके जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है। इस तरह का व्यक्ति शब्द, सिद्धांत, विचारों को एकत्रित करता हुआ एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकता रहता है। इस तरह का व्यक्ति शब्दों में निपुण हो सकता है, वह एक बड़ा पंडित बन सकता है, पर जहां तक जानने का सवाल है, वह जानता कुछ भी नहीं।

इस बात को ठीक से समझ लेना। एक तो होती है जानकारी- तुम जानकारी जितनी चाहो उतनी रख सकते हो, लेकिन फिर भी तुम रहोगे अज्ञानी के अज्ञानी ही। और फिर एक अज्ञान है जो सच में निर्दोष है- जानते तुम कुछ भी नहीं और फिर भी तुम उस स्थान पर आ गये होते हो जहां सब कुछ लिया गया होता है। इसलिए एक ज्ञान है जो कि अज्ञान है, और एक अज्ञान है जो कि प्रज्ञा है। विद्यार्थी की उत्सुकता ज्ञान में है।

परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है, तुम सदगुरु के पास आते तो हो एक विद्यार्थी की भांति, मात्र उत्सुकतावश, और फिर तुम उसके हृदय की धड़कन द्वारा पकड़ लिये जाते हो। तुम आये तो थे एक विद्यार्थी की भांति पर फिर तुम दूसरी अवस्था की ओर मुड़ने लग जाते हो।

विद्यार्थी तो अनावश्यक ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक, एक धर्मग्रंथ से दूसरे धर्मग्रंथ तक भटकता रहता है। वह बाह्य ज्ञान तो बहुत एकत्रित कर लेता है वह सब कूड़ा-कर्कट ही होता है।

एक बार वह विद्यार्थी के इस खोल से बाहर निकलकर शिष्य बन जाए, तब यह आना-जाना रुक जाता है; तब वह गुरु के साथ लयबद्ध होने लग जाता है। वह अपने बिना जाने ही रूपांतरित होने लग जाता है। जिस स्थिति का उसने अतीत में कभी सामना किया था, उसीका सामना अव वह एक बिल्कुल ही भिन्न ढंग से करता है।

संदेह विलीन हो जाते हैं, बुद्धि बच्चों का खेल मालूम पड़ती है। जीवन इतना विराट हो जाता है कि उसे शब्दों में नहीं समाया जा सकता। जैसे-जैसे वह शिष्यत्व में प्रवेश करने लगता है, वह अनकहे को भी सुनने लगता है- शब्दों, लाइनों, उन अंतरालों के बीच जब अचानक गुरु रुक जाता है फिर भी संवाद जारी रहता है।

शिष्य होना विद्यार्थी से बड़ी घटना है।

अतीत में, उपनिषदों के दिनों में, भारत में जो रहस्य-विद्यालय विद्यमान थे उन्हें गुरुकल के नाम से पुकारा जाता था। यह एक महत्वपूर्ण शब्द है- इसका अर्थ है "गुरु का परिवार"। यह कोई साधारण स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालय नहीं है। यह मात्र सीखने का प्रश्न ही नहीं है, यह प्रश्न है प्रेम में होने का। तुमसे अपने विश्वविद्यालय के शिक्षक के साथ प्रेममय होने की आशा नहीं की जाती।

परंतु गुरुकल में, जहां उपनिषद फले-फूले, यह एक प्रेम का परिवार था। सीखने का प्रश्न गौण था, होने का प्रश्न प्रमुख था। तुम कितना जानते हो वह बात नहीं है, तुम कितने हो, बात वह है। और गुरु तुम्हारे शरीर में, तुम्हारे मन में, कुछ भरने को आतुर नहीं है। वह तुम्हारी स्मृति को तेज करने नहीं जा रहा है क्योंकि उसका कोई उपयोग नहीं है। वह तो एक यंत्र द्वारा भी किया जा सकता है, और शायद यंत्र इसे तुमसे बेहतर कर सकता है।

मैंने एक कंप्यूटर के विषय में सुना है। उस कंप्यूटर में हर तरह की ज्येतिषीय जानकारी भरी हुई थी। और उस वैज्ञानिक ने जिसने वर्षों उस पर कार्य किया था और जो वर्षों तक उसमें सब तरह की ज्योतिषीय जानकारी भरता रहा था, स्वाभाविक था कि वह स्वयं ही पहला प्रश्न पूछना चाहता था जो सच में ही कठिन है। ऊपर से देखने में तो यह एक सरल-सा प्रश्न था- उसने कंप्यूटर से पूछा, "अब तुम तैयार हो। क्या तुम मुझे बता सकते हो कि मेरे पिता कहां हैं?"

कंप्यूटर ने कहा, "बेहतर यही है कि तुम न जानो।"

उसने कहा, "क्या? क्यों यह बेहतर है कि मैं यह बात न जानूं?"

कंप्यूटर बोला, "जिद न करो लेकिन यदि तुम जानना ही चाहते हो, तब फिर यह समस्या नहीं है। तुम्हारे पिता मछली पकड़ने गए हैं।"

उस वैज्ञानिक ने कहा, "बकवास मत करो। मेरे पिता को मरे तीन वर्ष हो चुके हैं। इसका मतलब है कि मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया!"

कंप्यूटर हंसा। उसने कहा, "दुखी मत होओ, तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है। जो आदमी तीन वर्ष पहले मरा वह तुम्हारा पिता न था। जाओ और अपनी मां से पूछो। तुम्हारा पिता तो मछली पकड़ने गया है, वह वापस आता ही होगा। वह तुम्हारा पड़ोसी है।"

एक कंप्यूटर भी वह काम कर सकता है जो मनुष्य की स्मृति नहीं कर सकती। एक अकेले कंप्यूटर के भीतर एक पूरा पुस्तकालय समा सका है। तुम्हें पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है; तुम बस कंप्यूटर से पूछो, और वह उत्तर दे देगा। और यह बहुत ही कम होगा कि कभी कोई गड़बड़ी हो जाए, या यदि कभी बिजली चली जाए या बैटरी कमजोर पड़ जाए।

सदगुरु तुम्हें कंप्यूटर बना देने में उत्सुक नहीं है। उसकी उत्सुकता है कि तुम स्वयं प्रकाश बनो, तुम्हारा अस्तित्व प्रामाणिक बने, एक अमर अस्तित्व- मात्र जानकारी नहीं, दूसरों ने जो कहा है वह नहीं, बल्कि तुम्हारा स्वयं का अनुभव।

जैसे-जैसे शिष्य सदगुरु के निकट और निकट आता है, रूपांतरण का एक बिंदु और आता है- जब शिष्य भक्त बन जाता है। और इन सभी सोपानों में एक सौंदर्य है।

शिष्य हो जाना एक महान क्रांति है, लेकिन भक्त होने की तुलना में कुछ भी नहीं। किस क्षण शिष्य परिवर्तित होकर भक्त बनता है? गुरु की ऊर्जा, उसका प्रकाश, उसका प्रेम, उसका मुस्कराना, उसकी उपस्थिति मात्र से शिष्य इतना पोषित हो जाता है- और बदले में वह कुछ दे नहीं सकता। ऐसा कुछ है ही नहीं जो वह दे सके। एक क्षण आता है जब वह गुरु के प्रति इतना अनुग्रहित होता है कि वह अपना सिर गुरु के चरणों में झुका देता है। स्वयं को देने के अतिरिक्त उसके पास कुछ भी नहीं होता। उसी समय से वह गुरु का ही अंग बन जाता है। गुरु के हृदय के साथ उसका हृदय धड़कने लगता है। वह गुरु के साथ एकलय हो जाता है। यही है गुरु के प्रति एकमात्र अनुग्रह, कृतज्ञता, कृतार्थता।

चौथी अवस्था में- शिष्य गुरु के साथ एक हो जाता है।

झेन सदगुरु रिंझाई के बारे में एक कहानी है। कि वह लगभग बीस वर्षो से अपने गुरु के साथ रहता आया था। एक दिन वह आया और गुरु की गद्दी पर बैठ गया। गुरु आये, उसने अपनी गद्दी पर रिंझाई को बैठे हुए देखा। वह गुरु चुपचाप वहां जाकर बैठ गये जहां कि रिंझाई बैठा करता था। दोनों ने कुछ कहा नहीं, फिर भी दोनों समझ गये। शिष्य हैरान और चकित थे कि "हो क्या रहा है?" अंततः रिंझाई ने गुरु से कहा, "क्या आपको बुरा नहीं लगा? क्या मैंने आपका अपमान किया है? क्या मैंने किसी तरह की अकृतज्ञता दिखायी है?"

गुरु हंसा। उसने कहा, "अब तुम गुरु हो गये हो। तुम घर आ गए हो; विद्यार्थी से शिष्य, शिष्य से भक्त, भक्त से गुरु होने तक। आज मैं बहुत आनंदित हूं कि अब तुम मेरा काम सम्हाल सकते हो। अब मुझे रोज-रोज आने की आवश्यकता नहीं। अब मैं जानता हूं कि कोई है, जिसके पास वही आभा मंडल, वही प्रकाश, वही सुगंध है।"

सच तो यह है कि तुम बहुत आलसी हो। यह काम तो तीन महीने पहले ही हो जाना चाहिये था; लेकिन तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। तीन महीने से मैं अनुभव कर रहा था कि यह आदमी व्यर्थ ही मेरे पैरों को पकड़े हुए है। वह गद्दी पर बैठ सकता है, और थोड़े-से परिवर्तन के लिए ही सही, मैं उसके पैर पकड़ सकता हूं। यह हिम्मत जुटाने में तुम्हें तीन महीने लग गए!"

रिंझाई बोला, "हे भगवान, मैं तो सोच रहा था कि इस बारे में कोई कुछ नहीं जानता! यह तो बस मेरे ही भीतर की बात है, मैं ही जानता हूं। और आप एकदम ठीक-ठीक तारीख बता रहे हैं। हां, तीन महीने हो गए। मैं आलसी भी हूं और मेरे भीतर इतनी हिम्मत और साहस भी न था। मैं हमेशा यही सोचता रहा कि यह बताना ठीक नहीं है, ऐसा उचित नहीं लगता।"

गुरु ने रिंझाई से कहा, "यदि तुम एक दिन और रुक गए होते तो मैंने तुम्हारे सिर पर डंडा मारा होता। निर्णय लेने के लिए तीन महीने पर्याप्त हैं। और तुम स्वयं तो निर्णय ले भी नहीं रहे थे, लेकिन अस्तित्व ने निर्णय ले ही लिया।"

उपनिषद एक रहस्य-विद्यालय है।

और आज हम एक उपनिषद में प्रवेश कर रहे हैं।

जब मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था तो मैंने केवल इसी कारण से विश्वविद्यालय छोड़ा कि यह पहले ही पड़ाव पर ठहर जाता है। कोई विश्वविद्यालय नहीं चाहता कि तुम शिष्य बनो; शिष्य, भक्त या गुरु बनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। और फिर ऐसे मंदिर भी हैं जो कि तुम्हें विद्यार्थी या शिष्य बनाये बिना ही तुम पर भक्ति लाद देते हैं- स्वभावतः ऐसी भक्ति झूठी और जड़-विहीन होगी ही। और पूरी दुनिया में मंदिर, मस्जिद, चर्च और सिनेगागों में भक्त हैं, जो शिष्यत्व के विषय में कुछ भी जाने बिना ही शिष्य और भक्त बन गए हैं।

रहस्य-विद्यालय जीवन के अलौकिक सत्य के साक्षात्कार की व्यवस्थित और विधिवत प्रक्रिया का नाम है। और वह अलौकिक रहस्य तुम्हारे चारों और, भीतर और बाहर दोनों तरफ हैं। बस एक विधि की

आवश्यकता है। सदगुरु तो बस गहन जल में, ध्यान में प्रवेश करने की विधि भर देता है, और अंततः एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करने की जहां कि तुम सागर में विलीन हो जाते हो; तुम स्वयं सागर ही हो जाते हो।

प्यारे भगवान,

यदि तलाश यही जानने की है कि "मैं कौन हूं", तब तो शायद मैं गलत राह पर मुड़ गया हूं। साक्षी द्वारा मैं स्वयं को परिभाषित करने के सभी ढंगों को खोता जा रहा हूं। मैं वह नहीं जो मैं करता हूं, मैं वह व्यक्तित्व नहीं जो उन्हें करता है। मैं अनुभव करता हूं कि मैं कम और कम जानता हूं कि "मैं कौन हूं"; मेरा चेहरा अब स्थाई नहीं मालूम होता। किसी अन्य चीज की अपेक्षा मैं स्वयं को एक बादल की तरह अधिक महसूस करता हूं- विस्तृत और प्रकाशयुक्त- और भी कुछ। क्या आप कृपया कुछ कहेंगे?

यह गलत मोड़ नहीं है। तुम सही राह पर हो।

तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारे कृत्य, तुम्हारे विचार, तुम्हारा मन, तुम्हारी भावनाएं यह कुछ भी तुम्हारी सचाई नहीं है। इसलिए स्वभावतः जो भी स्वयं की खोज पर निकलता है वह स्वयं को इस विचित्र स्थिति में पाता है, कि रोज-रोज वह और अधिक होते जाने की अपेक्षा वह कम और कम होता जाता है।

मन का तार्किक भाग कहता है, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम खोज रहे होते हो स्वयं को, और होता कुल इतना है कि तुम उन सब चीजों को खोते जाते हो जो कि तुम सोचते थे कि तुम हो। शायद तुम गलत मोड़ पर मुड़ गए हो। वापस आओ! पुरानी परिचित राह अधिक बेहतर थी। तुम अधिक विचार एकत्रित कर सकते थे, तुम और अधिक जानकार हो सकते थे। तुम एक बेहतर, अधिक प्रसिद्ध हो सकते थे। महत्वाकांक्षा के संसार में तुम और अधिक सीढ़ियां चढ़ सकते थे, और भी तुम कुछ बन सकते थे- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कोई ख्यातिप्राप्त व्यक्ति। तर्कपूर्ण मन को वही मार्ग ठीक जान पड़ता है।

लेकिन स्मरण रहे, तर्कयुक्त मन तुम्हें निरंतर सही दिशा से दूर रखेगा। सही दिशा तो वही होगी जहां तुम कम और कम होते जाओ। क्योंकि वह सब जो झूठ है झूठ की भांति जान लिया जाएगा। एक क्षण आता है जब तुम जान लोगे कि हर चीज झूठ, असत्य और मिथ्या है। तुम तो मात्र साक्षी हो, अधिक से अधिक साक्षी के बिंदु। लेकिन यह यात्रा आधी ही है।

सत्य को जानने से पहले व्यक्ति को झूठ को जानना होता है- क्योंकि जीते हम झूठ में हैं। इसलिये हमें इसे जानकर इसे छोड़ना होगा। हमें झूठ से रिक्त, पूर्णतः रिक्त होना होगा, ताकि हमारे अस्तित्व का सत्य उस अवकाश को भर सके। उस रिक्तता और सत्य के प्रवेश के पूर्व वहां अंतराल होगा, बहुत छोटा अंतराल----परंतु प्रतीत वह शाश्वत जैसा होगा।

जब झूठ बिदा होता है और सत्य प्रवेश करता है, उस बीच में एक छोटा-सा, एक क्षण का एक अत्यल्प भाग का अंतराल आता है। परंतु चूंकि यह शून्य है, ऐसा आभास होता है जैसे कि अनंत समय गुजर गया हो। और ये ही वे क्षण हैं जबकि सदगुरु, सदगुरु का परिवार व्यक्ति के लिए सहायक हो सकते हैं। सदगुरु की उपस्थिति ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि "निराश और हताश मत होओ। प्रतीक्षा और धर्य सीखो। यदि यह एक व्यक्ति को घट सकता है तो यह सब को घट सकता है।"

और सदगुरु का परिवार साधक को हर संभव सहयोग देगा, क्योंकि हरेक साधक उनमें से अलग-अलग अवस्था में होंगे। कोई ठीक उसी स्थिति में होगा जिसमें कि तुम हो, कोई उस स्थिति से गुजर चुका होगा, और उसका हाथ पकड़ने में ही तुम्हें उष्मा का, प्रेम का, करुणा का अनुभव होगा। रहस्य-विद्यालय में होने मात्र से ही- जो कि सदगुरु की उपस्थिति से भरपूर है- तुम्हें साहस प्राप्त होगा।

रहस्य-विद्यालय बिना किसी उद्देश्य के नहीं खोले गए थे। उसके पीछे कारण यह था कि अकेले यात्रा बहुत से पड़ावों पर अत्यंत कठिन और दुर्गम हो जाती है।

मुझे गौतम बुद्ध की एक कथा स्मरण आती है।

बुद्ध अपने शिष्य, आनंद के साथ यात्रा पर थे। सूर्यास्त से पूर्व ही वे दूसरे नगर तक पहुंच जाना चाहते थे; वे जितना तेज चल सकते थे उतने तेज चल रहे थे। पर चूंकि बुद्ध वृद्ध हो चले हैं और आनंद तो उनसे भी यादा वृद्ध है। वे चिंतित थे कि शायद रात्रि में उन्हें जंगल में ही रुकना पड़े, उनका पास के नगर तक पहुंचना शायद संभव नहीं है।

वे एक बूढ़े किसान से जो अपने खेत में काम कर रहा था, पूछते हैं, नगर अभी कितनी दूर और है?"

वह बूढ़ा आदमी बोला, "बहुत दूर नहीं। आप चिंता न करें। यही कोई बस अधिक से अधिक दो मील। आप शीघ्र पहुंच जाएंगे।" बुद्ध मुस्कराये। वह बूढ़ा भी मुस्कराया। आनंद को तो कुछ समझ ही नहीं आया कि यह हो क्या रहा है?

दो मील गुजर गये। नगर अभी भी नहीं आया और वे बहुत थक गये। थोड़ी दूर पर एक बूढ़ी स्त्री लकड़ियां इकट्ठी कर रही थी, आनंद ने उससे पूछा, "यहां से नगर अभी कितनी दूर और है?"

वह स्त्री बोली, "दो मील से अधिक नहीं। आप करीब-करीब पहुंच ही गए हैं, चिंतित और परेशान न होंये।" बुद्ध हंसे। वह वृद्ध स्त्री भी हंसी। आनंद ने फिर दोनों की ओर देखकर सोचा- यह वृद्ध स्त्री हंसी किसलिए? और दो मील के पश्चात भी नगर का कुछ अता-पता नहीं था।

उन्होंने एक तीसरे व्यक्ति से पूछा, फिर वही प्रश्न और वही उत्तर।

आनंद ने अपना झोला पटक दिया और बोला, "अब मैं नहीं चल सकता। मैं बहुत थक गया हूं। और मुझे ऐसा लगता है कि हम ये दो मील कभी पार न कर पायेंगे। तीन बार हमने उनकी बात पर भरोसा किया, परंतु एक प्रश्न मेरे मन में निरंतर उठ रहा है।"

चालीस वर्ष तक निरंतर बुद्ध के साथ रहते-रहते आनंद सीख गया था कि ऐसे व्यक्ति के साथ किस तरह से रहा जाए, उनसे अनावश्यक प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। लेकिन फिर भी उसने कहा, "अब यह आवश्यक है या अनावश्यक, मुझे इसकी परवाह नहीं है। एक बात मुझे आपको बतानी होगी- आप क्यों हंस रहे थे जब उस बूढ़े आदमी ने कहा था, दो मील, बस दो मील- आप लोगों को दो मील से अधिक न चलना होगा?" और आप फिर हंसे उस वृद्ध स्त्री के साथ भी यही घटना घटी। यह हंसी किस बात के लिये थी। आप लोगों के बीच में क्या घट रहा था? आप तो उन्हें जानते तक नहीं और न ही वे आपको जानते थे।"

बुद्ध ने कहा, हमारा एक-सा ही धंधा है। जब मैं हंसा तो वे भी हंसे। वे समझ गए कि इस आदमी का भी वही धंधा है कि लोगों कि हिम्मत बनाये रखो- "बस दो मील, बस जरा-सा और।"

बुद्ध ने कहा, "अपने सारे जीवन में मैं यही तो करता आया हूं। लोग अंततः पहुंच ही जाते हैं, परंतु यदि तुम शुरू से ही उन्हें बता दो कि पंद्रह मील दूर हो तो वे बस वहीं बैठ जाएंगे। लेकिन "दो मील" "दो मील" करके वे दो सौ मील भी चले जाएंगे।

और उन लोगों पर मैं इसलिए हंसा कि उस गांव को मैं जानता हूं, मैं पहले वहां जा चुका हूं। मैं जानता हूं कि यह दो मील नहीं है। लेकिन मैं चुप रहा क्योंकि तुम यह जानने के लिये बहुत आतुर थे कि यह कितनी दूर और है। मुझे मालूम था कि आज हम वहां पहुंच नहीं सकेंगे। परंतु इसमें नुकसान भी क्या था?- तुम उनसे पूछ सकते थे।

मनुष्य के मनाविज्ञान का एक गहन रहस्य इससे तुम समझ सकते हो। वे लोग करुणावान थे, वे झूठ नहीं बोल रहे थे, वे तो बस तुम्हारा उत्साह बढ़ा रहे थे। पहले वृद्ध व्यक्ति ने तुम्हें दो मील चला दिया, दूसरी वृद्ध स्त्री ने भी तुम्हें दो मील और आगे चला दिया। तीसरे व्यक्ति ने भी तुम्हें दो मील आगे पहुंचा दिया; बस तुम्हें थोड़े-से और लोगों की आवश्यकता थी और तुम नगर तक पहुंच गए होते! पर अब तुमने अपना झोला उतार दिया है। चलो ठीक है, हम यहीं इस बड़े वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं। नगर अभी भी दो मील नहीं है।"

रहस्य-विद्यालय तुम्हारी उस खोज में अकेले न रहने की, जो मूल रूप से अकेली है, मदद करता है; उस में साहस प्रदान करने में तुम्हारी मदद करता है जिसके विषय में कोई भविष्य वाणी नहीं की जा सकती।

लेकिन सदगुरु की प्रामाणिकता, उसका प्रेम- तुम भरोसा भी नहीं कर सकते कि तुम्हारा सदगुरु तुमसे झूठ बोल रहा होगा। क्योंकि उससे भी कुछ ऊंची बातें हैं। अगर मैं थोड़ा-सा झूठ बोलकर तुम्हें आत्यंतिक लक्ष्य तक पहुंच जाने में मदद कर सकता हूं, तो मैं जरा-भी हिचकिचाऊंगा नहीं, मैं झूठ, असत्य बोल दूंगा। क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम मुझे माफ कर दोगे; न केवल माफ कर दोगे, तुम अनुगृहीत और कृतज्ञ भी होगे कि मैं तुम्हारे लिए झूठ बोला। यदि मैंने तुमसे सत्य कह दिया होता, शायद तुम वहीं रुक गए होते।

यात्रा लंबी और श्रमसाध्य है। हर चीज को छोड़ना और दूर कर देना होगा। और यह केवल तभी संभव है जबकि कोई जिसे तुम प्रेम करते हो, जिसके तुम प्रेमी हो, जिस पर तुम श्रद्धा करते हो, वह तुमसे कहे, "चिंतित न होओ। जिन वस्तुओं को तुम छोड़ रहे हो वे वास्तविक नहीं हैं और जब तक तुम उन्हें छोड़ न दो, तुम सत्य को न पा सकोगे।"

वह जो भी असत्य है छोड़ना होता है। आत्यंतिक सत्य के उस बिंदु तक पहुंचना है जबकि तुम्हारे पास कुछ भी शेष नहीं बचता- न तो व्यक्तित्व, न नाम, न प्रसिद्धि, न चेहरा- क्योंकि सभी चेहरे अलग-अलग मुखौटे ही हैं, जिनका कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर तुम उपयोग करते रहे हो।

तुम देख सकते हो। बस सड़क के किनारे बैठ जाओ, जुहू बीच पर आए लोगों को देखो। तुम दूर से ही देखकर बता सकते हो कि कौन-सा जोड़ा विवाहित है अथवा नहीं। कैसे तुम बता सकते हो? विवाहित पुरुष को देखते से ही मालूम पड़ जाता है, उसे देखकर ऐसा लगता है जैसे कि सारे दिन उसे पीटा गया हो, और जैसे-तैसे वह घर पहुंचकर बिस्तर पर गिर जाने और सारे दुखस्वपन भूल जाने की चेष्टा कर रहा हो। पर वह यह चेहरा अपनी पत्नी को नहीं दिखा सकता। जब वह अपनी पत्नी की ओर देखता है, मुस्कराता है, आइसक्रीम लेने दौड़ता है- हालांकि मन में वह उसे गाली दे रहा होता है, "यह औरत तो नरक है।" परंतु नरक को वह आइसक्रीम और भेलपूरी भेंट करता है।

परंतु यदि वह किसी दूसरे की पत्नी के साथ हो तब उसकी आंखों में एक चमक दिखाई देती है, वह जवान दिखाई देता है। तुम सिर्फ वहां बैठ भर जाओ और उधर से गुजरते लोगों को देखो- कौन विवाहित है और कौन अविवाेहत है, कौन किसी अन्य की पत्नी के साथ जा रहा है। अलग-अगल मुखौटे!

जब तुम अपनी प्रेमिका के साथ होते हो, तुम्हारा चेहरा अलग होता है, जब तुम अपनी पत्नी के साथ होते हो, तुम्हारा चेहरा अलग होता है। अजीब बात है। जब तुम अपने मालिक, अपने बॉस के साथ होते हो, तुम्हारा चेहरा एक तरह का होता है; जब तुम अपने नौकर के साथ होते हो, तुम्हारा चेहरा दूसरी तरह का होता है।

अपने बॉस के सामने तुम अपनी पूंछ हिलाते हो, जो है तो नहीं, पर हिलती है। और अपने नौकर के साथ तुम ऐसा व्यवहार करते हो जैसे कि इंसान ही नहीं। क्या तुमने कभी अपने नौकर से "शुभ प्रभात" या "शुभ रात्रि" कहा है। नहीं। नौकर इंसान नहीं है। वह तुम्हारे कमरे से होकर गुजर जाए और तुम इतना ध्यान भी नहीं देते कि कोई वहां से गुजरा है।

ये सभी मुखौटे गिर जाएंगे और इन मुखौटों के पीछे ही तुम्हारा वास्तविक चेहरा, तुम्हारा मूल चेहरा है। लेकिन आनंद अनुभव करने से पहले तुम्हें इस सब पीड़ा से गुजरना ही होगा। आनंदित होना तो प्रत्येक कोई चाहत है, पर पीड़ा से गुजरना कोई भी नहीं चाहता। पीड़ा इसकी कीमत है- तुम्हें यह कीमत चुकानी ही पड़ेगी।

और कोई भी रहस्य-विद्यालय केवल तभी अस्तित्व में बना रह सकता है, जब उसके पास जीवंत सदगुरु हो। और जब सदगुरु शरीर से बिदा हो जाता है, तो रहस्य-विद्यालय भी विलीन हो जाता है। यही कारण है कि रहस्य-विद्यालय किसी परंपरागत धर्म में रूपांतरित नहीं होते।

जब तक गौतम बुद्ध जीवित थे उनके आसपास रहस्य-विद्यालय थे, पर उनके बिदा होते ही वे समाप्त हो गए। अब जो बौद्ध धर्म है उसका उन रहस्य-शिक्षाओं से कोई संबंध नहीं है। हालांकि जानकारों ने, विद्यार्थियों ने, विद्वानों ने, शोध करने वालों ने उनकी समस्त देश्नाओं को संगृहीत किया है, लेकिन उसकी आत्मा खो गई है।

चार्ल्स डार्विन के अंतिम जन्मदिवस पर ऐसा हुआ। वह बहुत वृद्ध हो गया था। और सभी को ऐसा लग रहा था कि यह उसकी अंतिम वर्षगांठ है, अतः सब मित्र और सहयोगी उसके जन्मदिवस पर एकत्रित हुए थे। आसपास के बच्चे भी उसके जन्मदिवस में भाग लेना चाहते थे। और उन्होंने एक मजेदार काम किया।

चार्ल्स डार्विन का सारा जीवन कीड़े-मकोड़ों, पशुओं, पक्षियों का अध्ययन करने में बीता क्योंकि वह इस खोज में था कि विकास कैसे घटा और इस विकास का घटनाक्रम किस प्रकार था।

बच्चों ने एक खेल किया। उन्होंने बहुत-से कीड़े पकड़े, उनको अलग-अलग हिस्सों में काटा और एक नया कीड़ा बनाया- किसी कीड़े का सिर, किसी की टांगें, किसी का धड़- इस तरह का कीड़ा कहीं कोई होता ही नहीं। और उन्होंने उसे खूब अच्छे से गोंद से चिपकाया, तैयार किया, और जब समारोह चल ही रहा था, वे भीतर गए, वह कीड़ा उन्होंने चार्ल्स डार्विन को दिया और बोले, "लोगों को शंका है कि अब आप बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहेंगे। और हमें भी यही डर है क्योंकि इस कीड़े का आपने अभी तक अध्ययन किया ही नहीं है। आपकी पुस्तकों में तो इस कीड़े का कहीं कोई जिक्र है ही नहीं।"

उसने कीड़े की ओर देखा, उसे तो अपनी आंखों पर भरोसा ही नहीं आय। ऐसा किसी कीड़े से उसका कभी सामना हुआ ही न था, ऐसा कोई कीड़ा कभी उसने देखा ही न था! और ये इन बच्चों को कहां से मिल गया। फिर उसने उस कीड़े को इधर से देखा, उधर से देखा और उन बच्चों का हंसी के मारे बुरा हाल हुआ जा रहा था। बच्चों ने पूछा, "क्या आप हमें इस कीड़े का नाम बता सकते हैं?"

डार्विन बोला, "हां, यह झूठ-मूठ का कीड़ा है।"

सभी धार्मिक ग्रंथ छल-कपट पूर्ण हैं- गोंद से कसकर चिपके हुए। और जिन्हें स्वयं सत्य का कोई अनुभव नहीं है वे ये भी नहीं जानते कि उनमें क्या कमी है- क्योंकि क्या कमी है यह पता लगाने के लिये तुम्हें उसे जानना होगा।

रहस्य-विद्यालय सदगुरु के साथ ही अस्तित्व में आता है और उसके साथ ही अदृश्य भी हो जाता है।

और ऐसा ही होना भी चाहिए।

प्रकृति में, अस्तित्व में प्रत्येक चीज जो वास्तविक है----गुलाब का फूल स्वयं को सुबह खोलता है और शाम होते-होते बिदा हो जाता है। केवल प्लास्टिक के फूल बने रहते हैं, वे सदा वैसे ही बने रहते हैं।

किसी रहस्य-विद्यालय के अंग बन जाना बड़े से बड़ा आशीर्वाद है। किसी ऐसे रहस्य-विद्यालय को खोज लेना, ऐसे लोगों को पा लेना जो स्वयं को खोज रहे हों और स्वयं को दूसरों पर आरोपित न कर रहे हों। बल्कि यदि आवश्यकता हो तो एक-दूसरे की मदद कर रहे हों। क्योंकि यदि आवश्यकता न हो तो मदद भी बाधा बन जाती है।

तुम एकदम ठीक मार्ग पर हो। तुम किसी गलत मोड़ पर नहीं हो। बस उस सबको जो झूठ है, मिथ्या है, असत्य है विलीन करते जाओ। और स्वयं को बादल की भांति, साक्षी की भांति अनुभव करना सुंदर है।

यही वे अंतराल के क्षण हैं। रात्रि जा चुकी है। जल्दी ही सूर्योदय होगा। इन अंतरालों को जितना सुंदर हो सके, बनाओ- मौन से, अहोभाव से। अस्तित्व के प्रति अहोभाव और कृतज्ञता, जिसने तुम्हें यह अवसर प्रदान किया, कृतज्ञता और अहोभाव उन सबके प्रति जिन्होंने तुम्हारी मदद की। और प्रतीक्षा करो।

"प्रतीक्षा" कुंजी है।

तुम अस्तित्व को किसी भी चीज के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

तुमने बीज बो दिये हैं, तुम बगीचे को सींच रहे हो; अब प्रतीक्षा करो। किसी भी प्रकार की जल्दबाजी खतरनाक है। हर चीज को उगने के लिये समय चाहिए। केवल नकली चीजें जल्दी से और एक जैसी निर्मित की जा सकती हैं। लेकिन वास्तविक और असली चीजों को विकसित होने में समय लगता है।

और केवल आंतरिक विकास समूचे अस्तित्व में बड़े से बड़ा विकास है।

उपनिषद का मार्ग

इक्कीसवां प्रवचन

## भारत : एक अनूठी संपदा

(Note: Translated only first question from Talk #21 of Osho Upanishad given on 8 September 1986 pm in Mumbai. This is compiled in Mera Swarnim Bharat.)

प्रश्न- प्यारे ओशो!

भारत में आपके पास होना, दुनिया में और कहीं भी आपके सान्निध्य में होने से अधिक प्रभावमय है। प्रवचन के समय आपके चरणों में बैठना ऐसा लगता है जैसे संसार के केन्द्र में, हृदय-स्थल में स्थित हों। कभी-कभी तो बस होटल के कमरे में बैठे-बैठे ही आंख बंद कर लेने पर मुझे महसूस होता है कि मेरा हृदय आपके हृदय के साथ धड़क रहा है।

सुबह जागने पर जब आसपास से आ रही आवाजों को सुनती हूं, तो वे किसी भी और स्थान की अपेक्षा, मेरे भीतर अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं। ऐसा अनुभव होता है कि यहां पर ध्यान बड़ी सहजता से, बिना किसी प्रयास के, नैसर्गिक रूप से घटित हो रहा है।

क्या भारत में आपके कार्य करने की शैली भिन्न है, अथवा यहां कोई 'प्राकृतिक बुद्ध क्षेत्र' जैसा कुछ है?

लतीफा! भारत केवल एक भूगोल या इतिहास का अंग ही नहीं है। यह सिर्फ एक देश, एक राष्ट्र, एक जमीन का टुकड़ा मात्र नहीं है। यह कुछ और भी है-एक प्रतीक, एक काव्य, कुछ अदृश्य सा-किंतु फिर भी जिसे छुआ जा सके! कुछ विशेष ऊर्जा-तरंगों से स्पंदित है यह जगह, जिसका दावा कोई और देश नहीं कर सकता।

इधर दस हजार वर्षों में सहस्रों लोग चेतना की चरम विस्फोट की स्थिति तक पहुंचे हैं। उनकी तरंगें अभी भी जीवंत है। उनका असर अभी भी हवाओं में मौजूद है। तुम्हें सिर्फ एक विशेष तरह की ग्राहकता की, संवेदनशीलता की, उस अदृश्य को ग्रहण करने को क्षमता की जरूरत है- जो इस अद्भुत भूमि को घेरे हुए है।

अद्भुत इसलिए कहा, क्योंकि इसने सिर्फ एक ही खोज- सत्य की खोज के लिए सब कुछ न्यौछावर कर दिया। इस देश ने बड़े फिलासफर पैदा नहीं किए- तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा- न प्लेटो, न अरस्तू; न थामस एक्युनस, न कांट; न हीगल, न ब्राडले; और न ही बर्ट्रेंड रसेल। भारत के पूरे अतीत ने एक भी फिलासफर को जन्म नहीं दिया- और वे सत्य की खोज में संलग्न थे।

निश्चित ही उनकी खोज, अन्य देशों में की जा रही खोज से सर्वथा भिन्न थी। दूसरे देशों में लोग सत्य के संबंध में चितन कर रहे थे। भारत में वे सत्य के बारे में विचार नहीं कर रहे थे- क्योंकि कोई सत्य के विषय में भला क्या विचार कर सकता है! या तो सत्य को जानते हो, या नहीं जानते हो। चिंतन-मनन असंभव है, फिलासफी की संभावना ही नहीं, वह तो बिल्कुल ही फिजूल और व्यर्थ की मेहनत है। वह तो एक अंधे आदमी द्वारा प्रकाश के संबंध में सोचने-विचारने जैसी बात है- क्या खाक चिंतन कर सकता है वह? है हो सकता है वह बड़ा प्रतिभाशाली हो, महान तर्कशास्त्री हो, पर इससे क्या फर्क पड़ता है? है न प्रतिभा की जरूरत है और न तर्कों की। जरूरत तो है बस आंखों की- जो देख सकें।

प्रकाश देखा जा सकता है, पर सोचा नहीं जा सकता। सत्य भी देखा जा सकता है, किंतु विचारा नहीं जा सकता। इसीलिए भारत में हमारे पास 'फिलासफी' का समानार्थी शब्द ही नहीं है। सत्य की खोज को हम दर्शन कहते हैं, और 'दर्शन' का मतलब होता है- 'देखना'। फिलासफी का अर्थ है सोचना-विचारना और स्मरण रहे कि विचार-प्रक्रिया हमेशा वर्तुलाकार होती है, इर्द-गिर्द घूमती है... बस विषय में, विषय में और विषय में... वह कभी भी अनुभूति के केंद्र बिंदु पर नहीं पहुंचती।

पूरी दुनिया में भारत ही एक ऐसी भूमि है, जिसने अद्‌भुत रूप से अपनी सारी प्रतिभा को, सत्य को जानने और सत्य ही हो जाने के प्रयास में एकाग्र कर दिया, समर्पित कर दिया।

भारत के पूरे इतिहास में एक भी बड़ा वैज्ञानिक तुम न पाओगे। ऐसा नहीं कि यहाँ बुद्धिमान और कुशल लोग न हुए, कि प्रतिभाएं नहीं जन्मीं। गणित की आधारशिला भारत में रखी गई थी, किंतु अल्बर्ट आइंस्टीन यहाँ पैदा नहीं हुआ। चमत्कारिक रूप से यह पूरा देश किसी बाह्य खोज में उत्सुक ही नहीं था। 'पर' की पहचान नहीं, वरन स्वयं को जानना ही यहाँ एकमात्र लक्ष्य रहा।

कम से कम दस हजार सालों से लाखों-करोडों लोग सतत एक ही प्रयास में जुटे रहे, उसके पीछे सब कुछ बलिदान का दिया- विज्ञान, तकनीकी विकास, समृद्धि। उन्होंने दरिद्रता, रुग्णता, बीमारियां और मृत्यु को भी स्वीकार कर लिया, परंतु सत्य की खोज को किसी भी कीमत पर नहीं छोडा... इससे एक खास किस्म का वातावरण निर्मित हुआ, कुछ विशेष तरह की तरंगों का सागर जो चारों ओर से तुम्हें घेरे है।

यदि कोई थोड़े से भी ध्यानी चित्त को लेकर यहाँ आता है, तो उसे उन तरंगों का संस्पर्श होगा। हो, अगर एक पर्यटक की भांति आते हो तो तुम चूक जाओगे। तुम मंदिरों, महलों, खंडहरों को, ताजमहल, खजुराहो, और हिमालय को तो देख लोगे, पर भारत को नहीं देख पाओगे। तुम असली भारत से बिना मिले ही भारत से गुजर जाओगे। यद्यपि वह सब ओर व्याप्त था, पर तुम संवेदनशील न थे, ग्राहक न थे। तुम कुछ ऐसा देखकर लौटोगे जो वास्तविक भारत नहीं, सिर्फ उसका अस्थि-पंजर है, आत्मा नहीं। तुम्हारे पास उस अस्थि-पंजर के फोटोग्राफ्स होंगे, उनका एलबम बनाओगे और सोचोगे कि भारत धूम आए, भारत को जान लिया... यह स्वयं को धोखा दे रहे हो तुम।

एक आध्यात्मिक पहलू भी है। न तो तुम्हारे कैमरा उसके चित्र लेने में, और न ही तुम्हारे शिक्षा-संस्कार उसे पकड़ने में सक्षम हैं। जर्मनी, इटली, फ्रांस, इंग्लैंड किसी भी देश में जाकर तुम वहाँ के लोगों से मिल सकते हो। वहाँ के भूगोल से, इतिहास और अतीत से भलीभांति परिचित हो सकते हो। लेकिन जहाँ तक भारत का प्रश्न है, ऐसा नहीं किया जा सकता। यदि अन्य देशों की श्रेणी में भारत को गिना, तो प्रारंभ से ही तुमने चूक कर दी, क्योंकि उन देशों में वैसा आध्यात्मिक आमामंडल नहीं है। उन्होंने एक भी गौतम बुद्ध, महावीर, नेमिनाथ और आदिनाथ को जन्म नहीं दिया। एक भी कबीर, फरीद या दादू पैदा नहीं किया। उन्होंने बड़े वैज्ञानिकों, कवियों, कलाकारों, चित्रकारों और सभी प्रकार के प्रतिभा-संपन्न व्यक्तियों को तो पैदा किया, पर रहस्यदर्शी ऋषि भारत की मोनोपली है, एकाधिकार है, कम से कम अभी तक तो रहा है।

और ऋषि एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का का मनुष्य है। वह मात्र प्रतिभावान ही नहीं, एक महान चित्रकार या कवि ही नहीं- वह तो दिव्यता का माध्यम है, भगवत्ता के लिए एक पुकार और आमत्रण है। वह भीतर दिव्यता के उतरने के लिए द्वार खोलता है। और हजारों सालों से लाखों ऋषियों ने द्वार खोले हैं- इस देश की हवाओं को दिव्यता से मरने के लिए। मेरे लिए वह दिव्य वातावरण ही वास्तविक भारत है। परंतु उसे जानने के लिए तुम्हें एक विशेष प्रकार की भावदशा में होना होगा।

लतीफा, चूंकि तुम शांत होने का प्रयास कर रही हो, ध्यान में डूब रही हो, इसलिए वास्तविक भारत को तुम स्वयं के संपर्क में आने दे पा रही हो। हां, तुम ठीक कहती हो जिस सरलता से इस गरीब देश में तुम सत्य को उपलब्ध कर सकती हो, वैसा किसी और जगह पर संभव नहीं। यह अत्यंत दीन-हीन है पर फिर भी इसकी आध्यात्मिक वसीयत इतनी समृद्ध है कि अगर तुम अपनी आखें खोलकर उसे देख सको तो बहुत आश्चर्यचकित हो जाओगी। शायद यही एकमात्र मुल्क है जो बडी गहनता से चैतन्य के विकास में संलग्न रहा, किसी और चीज में नहीं। दूसरे सभी मुल्क और हजारों चीजों में व्यस्त। लेकिन इस मुल्क का एक ही लक्ष्य, एक ही उदेश्य रहा कि कैसे मनुष्य की चेतना उस बिंदु तक उठ सके, जहाँ भगवत्ता से मिलन हो। कैसे भगवता और मनुष्य करीब आएं।

और यह किसी इक्के-दुक्के आदमी की नहीं, करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियों के जीवन की बात है। कोई एक दिन, महीना, या साल का सवाल नहीं, सहस्रों वर्षों की सतत साधना है। स्वभावतः इस देश में सब ओर एक अत्यंत ऊर्जामय क्षेत्र निर्मित हो गया है, वह पूरी जगह पर छाया है। तुम्हें सिर्फ तैयार (संवेदनशील) होना है।

यहां संयोग मात्र ही नहीं है कि जब भी कोई सत्य के लिए प्यासा होता है, अनायास ही वह भारत में उत्सुक हो उठता हे, अचानक वह पूरब की यात्रा पर निकल पड़ता है। और यह केवल आज की ही बात नहीं यह उतनी ही प्राचीन बात है जितने पुराने प्रमाण और उल्लेख मौजूद हैं। आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, सत्य की खोज में पाइथागोरस भारत आया था। ईसामसीह भी भारत आए थे।

ईसामसीह की तेरह से तीस वर्ष की उम्र के बीच का बाइबिल में कोई उल्लेख नहीं है। और यही उनकी लगभग पूरी जिंदगी थी, क्योंकि तैंतीस की उम्र में तो उन्हें सूली पर ही चढ़ा दिया गया था। तेरह से तीस तक के सत्रह सालों का हिसाब गायब है। इतने समय वे कहां रहे, और बाइबिल में उन सालों को क्यों नहीं रिकार्ड किया गया? उन्हें जान-बूझकर छोड़ा गया है, कि वह एक मौलिक धर्म नहीं है, कि ईसामसीह जो भी कर रहे हैं वे उसे भारत से लाए हैं।

यह बहुत ही विचारणीय बात है। वे एक यहूदी की तरह जन्में, यहूदी की तरह जिए, और यहूदी की तरह मरे। स्मरण रहे कि वे ईसाई नहीं थे, उन्होंने तो-ईसा और ईसाई ये शब्द भी नहीं सुने थे। फिर क्यों यहूदी उनके इतने खिलाफ थे? यह सोचने जैसी बात है, आखिर क्यों? न तो ईसाइयों के पास इस सवाल का ठीक-ठीक जवाब है, न ही यहूदियों के पास। क्योंकि इस व्यक्ति ने किसी को कोई नुकसान नहीं पहुचाया। वे उतने ही निर्दोष थे, जितनी कि कल्पना की जा सकती है।

... पर उनका अपराध बहुत सूक्ष्म था। पढ़े-लिखे यहूदियों और चतुर रबाईयों ने स्पष्ट देख लिया कि वे पूरब से विचार ला रहे हैं, जो कि गैर-यहूदी हैं। वे कुछ अजीबोगरीब और विजातीय बातें ला रहे हैं। और यदि इस दृष्टिकोण से देखो तो तुम्हें समझ आएगा कि क्यों वे बार-बार कहते हैं- ‘अतीत के पैगम्बरों ने तुमसे कहा था कि यदि कोई तुम पर क्रोध करे, हिंसा करे, तो आंख के बदले में आंख लेने और ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार रहना। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हें चोट पहुंचाता है, एक गाल पर चांटा मारता है, तो उसे अपना दूसरा गाल भी दिखा देना।’ यह पूर्णतः गैर-यहूदी बात है। उन्होंने ये बातें गौतम बुद्ध और महावीर की देशनाओं से सीखी थीं।

वे जब भारत आए थे-तब बौद्ध धर्म बहुत जीवंत था, यद्यपि बुद्ध की मृत्यु हो चुकी थी। गौतम बुद्ध के पांच सौ साल बाद जीसस यहां आए, पर बुद्ध ने इतना विराट आंदोलन, इतना बडा तूफान खड़ा किया था कि तब तक भी पूरा मुल्क उसमें डूबा हुआ था। उनकी करुणा, क्षमा, प्रेम के उपदेशों को पिए हुआ था। जीसस कहते हैं

कि 'अतीत के पैंराम्बरों द्वारा यह कहा गया था'- कौन हैं ये पराने पैगम्बर? वे सभी प्राचीन यहूदी पैगम्बर हैंः इजेकिएल, इलिजाह, मोसेस,-'कि ईश्वर बहुत ही हिंसक है, और वह कभी क्षमा नहीं करता।?'

यहां तक कि उन्होंने ईश्वर के मुंह से भी ये शब्द कहलवा दिए हैं। पुराने टेस्टामेंट के ईश्वर के वचन हैं, ' मैं कोई सज्जन पुरुष नहीं हूं, तुम्हारा चाचा नहीं हूं। मैं बहुत क्रोधी और ईर्ष्यालु हूं, और याद रहे जो भी मेरे साथ नहीं हैं वे सब मेरे शत्रु हैं।'

और ईसामसीह कहते हैं कि 'मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा प्रेम है।' यह ख्याल उन्हें कहां से आया कि परमात्मा प्रेम है? गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के सिवाय दुनिया में कहीं भी परमात्मा को प्रेम कहने का कोई और उल्लेख नहीं है।

उन सत्रह वर्षों में जीसस इजिप्त, भारत, लद्दारव और तिब्बत की यात्रा करते रहे। और यही उनका अपराध था कि वे यहूदी परंपरा में बिल्कुल अपरिचित और अजनबी विचारधाराएं ला रहे थे। न केवल अपरिचित बल्कि वे बातें यहूंदी धारणाओं से एकदम विपरीत थीं।

तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि अंततः उनकी मृत्यु भी भारत में हुई। और ईसाई रिकार्ड्स इस तथ्य को नजरअंदाज करते रहे हैं। यदि उनकी बात सच है कि जीसस पुनर्जीवित हुए थे, तो फिर पुनर्जीवित होने के बाद उनका क्या हुआ? आजकल वे कहा हैं? क्योंकि उनकी मृत्यु का तो कोई उल्लेख है ही नहीं!

सच्चाई यह है कि वे कभी पुनर्जीवित नहीं हुए। वास्तव में वे सूली पर कभी मरे ही नहीं थे। क्योंकि यहूदियों की सूली आदमी को मारने की सर्वाधिक बेहूदी तरकीब है। उसमें आदमी को मरने में करीब-करीब अड़तालीस घंटे लग जाते हैं। चूंकि हाथों में और पैरों में कीलें ठोंक दी जाती हैं, तो बूंद-बूंद करके उनसे खून टपकता रहता है। यदि आदमी स्वस्थ है तो साठ घंटे से भी ज्यादा लोग जीवित रहे ऐसे उल्लेख हैं। औसत अड़तालीस घंटे तो लग ही जाते हैं। और जीसस को तो सिर्फ छः घंटे बाद ही सूली से उतार दिया गया था। यहूदी सूली पर कोई भी छः घंटे में कभी नहीं मरा है, कोई मर ही नहीं सकता है।

यह एक मिलीभगत थी (जीसस के शिष्यों की) पोंटियस पॉयलट के साथ। पोंटियस यहूदी नहीं था, वह रोमन वाससराय था। क्योंकि जूडिया उन दिनों रोमन साम्राज्य के आधीन था, और इस निर्दोष युवक की हत्या में उसे कोई रुचि नहीं थी। उसके दस्तखत के बगैर यह हत्या नहीं हो सकती थी, और उसे अपराध भाव अनुभव हो रहा था कि वह इस भद्दे और क्रूर नाटक में भाग ले रहा है। चूंकि पूरी यहूदी भीड़ पीछे पड़ी थी कि जीसस को सूली लगनी चाहिए, वह एक जीसस मुद्दा बन चुका था। पोंटियस पॉयलट दुविधा में था; यदि वह जीसस को छोड़ देता है, तो वह पूरी जूडिया को, जो कि यहूदी है, अपना दुश्मन बना लेता है। यह कूटनीतिक नहीं होगा। और यदि वह इस व्यक्ति को सूली देता है तो उसे सारे देश का समर्थन तो मिल जाएगा मगर उसके स्वयं के अंतःकरण में एक घाव छूट जाएगा कि राजनैतिक परिस्थिति के कारण एक निरपराध व्यक्ति की हत्या की गई, जिसने कुछ भी गलत नहीं किया था।

तो उसने शिष्यों के साथ यह व्यवस्था की कि शुक्रवार को, जितनी संभव तो सके उतनी देर से सूली दी जाए। चूंकि सूर्यास्त होते ही शुक्रवार की शाम को यहूदी सब प्रकार के कामधाम बंद का देते हैं; फिर शनिवार को कुछ भी काम नहीं होता, वह उनका पवित्र दिन है। यद्यपि सूली दी जानी थी शुक्रवार की सुबह, पर उसे स्थगित किया जाता रहा; ब्यूरोक्रेसो तो किसी भी कार्य में देर लगा सकती है। अतः जीसस को दोपहर के बाद सूली पर चढ़ाया, और सूर्यास्त के पूर्व ही उन्हें जीवित उतार लिया गया, यद्यपि वे बेहोश थे, क्योंकि शरीर से रक्त स्राव हुआ था, और कमजोरी आ गई थी। फिर जिस गुफा में उनकी देह को रखा गया वहां का चौकीदार...

पवित्र दिन के पश्चात यहूदी उन्हें पुनः सूली पर चढ़ाने वाले थे, मगर वह चौकीदार, गुफा का रक्षक रोमन था... इसीलिए यह संभव हो सका कि शिष्यगण जीसस को बाहर निकाल लिए और फिर जूडिया के भी बाहर गए।

जीसस ने भारत में जाना क्यों पसंद किया? क्योंकि अपनी युवावस्था में भी वे वर्षों तक भारत में रह चुके थे। उन्होंने अध्यात्म का और ब्रह्म का परम स्वाद इतनी निकटता से चखा था, कि उन्होंने वहीं लौटना चाहा। तो जैसे ही स्वस्थ हुए, वे वापस भारत आए, और फिर एक सौ बारह साल की उम्र तक जिए।

काश्मीर में अभी भी उनकी कब्र है। उस पर जो लिखा है, वह हिब्रु भाषा में है... स्मस्ण रहे भारत में कोई यहूदी नहीं रहते। उस शिलालेख पर खुदा है 'जोशुआ'-वह हिबुर भाषा में ईसामसीह का नाम है। 'जीसस' 'जोशुआ' का ग्रीक रूपांतरण है। 'जोशुआ यहां आए'- एमय, तारीख वगैरह सब दी हैं। 'एक महान सद्गुरु, जो स्वयं को भेड़ों का गडरिया पुकारते थे, अपने शिष्यों के साथ शांतिपूर्वक एक सौ बारह माल की दीर्घायु तक यहां रहे' इसी वजह से वह स्थान 'भेडों के चरवाहे का गांव' कहलाने लगा। तुम वहाँ जा सकते हो, वह शहर अभी भी है- 'पहलगाम', उसका काश्मीरी में वही अर्थ है- 'गड़रिए का गांव।'

वे यहाँ रहना चाहते थे, ताकि और अधिक आत्मिक विकास कर सके। एक छोटे से शिष्य समूह के साथ वे रहना चाहते थे ताकि वे सभी शांति में, मौन में डूबकर आध्यात्मिक प्रगति कर सकें। और उन्होंने मरना भी यहीं चाहा, क्योंकि यदि तुम जीने की कला जानते हो तो यहाँ जीवन एक सौंदर्य है, और यदि तुम मरने की कला जानते हो तो यहाँ मरना भी अत्यंत अर्थपूर्ण है।

केवल भारत में ही मृत्यु की कला खोजी गई है, ठीक वैसे ही जैसे जीने की कला खोजी गई है। वस्तुतः तो वे एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि मूसा ने भी भारत में आकर देह त्यागी। उनकी और जीसस की समाधियां एक ही स्थान में बनी है। शायद जीसस ने ही महान सद्गुरु मूसा के बगल वाला स्थान स्वयं के लिए चुना होगा। पर मूसा ने क्यों काश्मीर में आकर मृत्यु में प्रवेश किया।

मूसा ईश्वर के देश 'इजराइल' की खोज में यहूदियों को इजिप्त के बाहर ले गए थे। उन्हें चालीस वर्ष लगे, जब इजराइल पहुंचकर उन्होंने घोषणा की कि 'यही है वह जमीन, परमात्मा की जमीन, जिसका वादा किया गया था। और मैं अब वृद्ध हो गया हूं तथा अवकाश लेना चाहता हूं। हे नई पीढ़ी वालो, अब तुम संभालो।'

क्योंकि जब उन्होंने इजिप्त से यात्रा प्रारंभ की थी, तब की पीढ़ी लगभग समाप्त हो चुकी थी। बद्धू मरते गये, जवान बूढ़े हो गये, नए बच्चे पैदा होते रहे। जिस मूल समूह ने मूसा के साथ शुरूआत की थी, वह अब बचा ही नहीं था। मूसा करीब-करीब एक अजनबी की भांति अनुभव कर रहे थे। उन्होंने युवा लोगों को शासन और व्यवस्था का कार्यभार सौंपा और इजराइल से विदा हो लिए।

यह अजीब बात है कि यहूदी धर्मशास्त्रों में भी, उनकी मृत्यु के संबंध में, उनका क्या हुआ इस बारे में कोई उल्लेख नहीं है। हमारे यहां (काश्मीर में) उनकी कब्र है। उस समाधि पर भी जो शिलालेख है, वह हिबुर भाषा में ही है। और पिछले चार हजार सालों से एक यहूदी परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी उन दोनों समाधियों की देखभाल कर रहा है।

मूसा भारत आना क्यों चाहते थे? केवल मृत्यु के लिए? हां, कई रहस्यों में से एक रहस्य यह भी है कि यदि तुम्हारी मृत्यु एक बुद्धक्षेत्र में हो सके, जहां केवल मानवीय ही नहीं वरन भगवत्ता की ऊर्जा-तरंगें हों, तो तुम्हारी मृत्यु भी एक उत्सव और निर्वाण बन जाती है।

सदियों से, सारी दुनिया से साधक इस धरती पर आते रहे हैं। यह देश दरिद्र है, उसके पास भेंट देने को कुछ भी नहीं, पर जो संवेदनाशील हैं; उनके लिए सबसे अधिक समृद्ध कौम इस पृथ्वी पर कहीं और नहीं है। लेकिन यह समृद्धि आंतरिक है।

लतीफा, तुम ठीक कहती हो। सिर्फ थोड़ा और खुलो, शांत और शिथिल होओ, थोड़ा और समर्पण की भावदशा में डूबो, तो मनुष्य के लिए जो बड़े से बड़ा संभव है- ऐसा महानतम खजाना यह गरीब देश तुम्हें दे सकता है।

-दि ओशो उपनिषद-1 से अनुवादित